मां-बेटी के नायकत्व में निखरता पिता

डा० ऋषभ कुमार मिश्रा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में सहायक प्रोफेसर

सारांश

इस लेख में एक मध्यम वर्गीय नौकरी पेशा युवा की दृष्टि से उसके पिता होने के अर्थ को प्रस्तुत किया गया है। यह लेख बताता है कि कैसे पिता-पुत्री के बीच रिश्ते को दोनों मिलकर रच रहे हैं? कैसे पिता का विकासात्मक संदर्भ, सांस्कृतिक विश्वदृष्टि और अकादमिक प्रशिक्षण जन्य प्रगतिशीलता उसके पितृत्व में प्रकट होती है?

रिश्तों के बारे में बातें करना और लिखना, खासकर तब, जब आप खुद उनमें से किसी एक की भूमिका में हो, एक कठिन कार्य है। ऐसा करते हुए हम अपने संबंधों की रुमानी दुनिया के आकर्षण में पाठक को बांधना चाहते हैं। फलतः ऐसी अभिव्यक्ति निजी अनुभवों का आख्यान बनकर रह जाती है। इस लेख में इस प्रवृत्ति से खुद को सुरक्षित रखने का प्रयास करते हुए मैं एक मध्यमवर्गीय, उच्च शिक्षित, और परिवार से दूर रहकर पिता की भूमिका निभाने वाले युवा के रुप में अपने अनुभवों को मननपूर्ण ढंग से लिख रहा हूं।

अक्सर हमारी स्मृतियों में पिता की छवि एक ऐसे पुरुष की होती है जो परिवार के आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक दायित्वों का प्रतिनिधि होता है। इस छवि में वह अपने बच्चों और परिवार के सदस्यों के लिए एक नायक की तरह होता है जो सभी के अरमानों और अपेक्षाओं को पूर्ण कर रहा होता है। नगरीय मध्यमवर्गीय परिवार जहां माता और पिता दोनों उच्च वेतन वाली नौकरी कर रहे हैं और दोनों मिलकर परिवार के दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं, वहां पिता की ऐसी 'सख़्त' छवि थोड़ा उदार हुई है। नए जमाने के पढ़े-लिखे युवा इस नई छवि को पसंद भी कर रहे हैं। वे परिवार और बच्चों के लिए बाहरी दुनिया से संबंध जोड़ने वाली भूमिका के साथ उनके आंतरिक दुनिया का भी हिस्सा बनना चाहते हैं। वे बच्चों की मां के साथ-साथ उनकी जिम्मेदारी उठाने के लिए आगे आ रहे हैं। अपने संदर्भ में भी मैं यही देखता हूं। जब से मैं पिता बना हूं तब से मेरे विचार-प्रक्रिया में मां, पिता, भाई और पत्नी के ऊपर मेरी बेटी आ गई है। किसी भी आम मध्यमवर्गीय कस्बाई युवा की भांति मैं उसकी जरुरतों को पूरा करने के लिए तैयार रहना चाहता हूं तो उसकी मां की तरह उसे समनुभूतिपूर्ण 'केयर' भी प्रदान करना चाहता हूं। समय के साथ-साथ मैंने देखा है कि एक पुरुष के लिए यह कहना जितना सरल है, हकीकत में उसे उतारना उतना कठिन है। शुरुआत के दो-तीन वर्षों में मैंने देखा है कि कितना भी प्रयत्न क्यों न करूं मेरी बेटी के लिए उसकी मां पहली और आखिरी प्राथमिकता होती थी। परिवार से दूर रहने और केवल अवकाश के दौरान परिवार के साथ समय बिताना इसका सबसे बड़ा कारण था। मैं कम समय में उसकी मां के जैसा घनिष्ठ रिश्ता नहीं बना सकता था। हां यह जरुर है कि पिता की भूमिका में उसके साथ अपनी उपस्थिति को हमेशा बनाए रखता था। पिछले दो वर्षों में जब मेरी बेटी बड़ी हुई तो इस प्रवृत्ति में बदलाव हुआ है। उसने अब मां और पिता दोनों की भूमिकाओं के लिए अलग-अलग दायरे बना लिए है। कौन सा खेल किसके साथ खेलना है? कौन सी बात किससे करनी है? किससे, कैसे निगोशिएट करना है? इसकी समझ उसके व्यवहार में दिखती है। इस तरह से परिवार में पालक की भूमिका और पिता की भूमिका में मेरी पहचान को मुझसे ज्यादा मेरी बेटी तय कर रही है। हालाकि यह कोई प्रतियोगिता नहीं है, बल्कि पारस्परिकता का संबंध है। इस पारस्परिकता में बेटी के 'अबोध' होने का घटक कमजोर है, उसकी कर्ता और अर्थनिर्माता की भूमिका महत्वपूर्ण है। इन भूमिकाओं में वह मेरे लिए जो 'स्पेश' पैदा करती है, वह अनूठा है, वही हम दोनों के लिए नितांत निजी है। इस निजता में ही जीवन के रंग हैं। इस रिश्ते को जब मैं अपनी बेटी की निगाह से देखता हूं तो मेरा उसके साथ होना उसे एक सुरक्षित आजादी देता है। वह मेरे साथ पार्क में देर तक साइकिल चला सकती है। वह अधिक शारीरिक ऊर्जा और भागमभाग वाले खेल, खेल सकती है। वह अपनी काल्पनिक दुनिया के पात्रों को साकार करने के लिए मुझे खेल में रोल दे सकती है। मेरी और उसकी अंतःक्रियाओं में वह पापा के पीछे चलने वाली और हां कहने वाली बेटी नहीं है। वह पापा के साथ और पापा के साथ तर्क करने वाली बेटी है। उदाहरण के लिए हाल में ही हम साथ-साथ दुकान गए। वहां उसने कुछ

खिलौने देखे। उसने पिचकारी ली। जबकि उसके पास एक दिन पहले ही एक नई पिचकारी आई थी। इसके बाद एक खिलौने को लेने से इसलिए मना कर दिया। उसने अपने इस फैसले का क्रमबद्ध तरीके से कारण बताया जिसका निष्कर्ष था कि उसके पास अपेक्षित खिलौने से मिलता-जुलता एक खिलौना पहले से ही था। ऐसे ही वह खेल के दौरान छोटे-छोटे निर्देश देती है, उसका पालन करवाती है। उसके साथ अंग्रेजी की किताब पढ़ते हुए भारतीय शैली में उच्चारण करने पर वह ठीक करवाती है। वह अपनी अध्यापिका को बताती है कि मेरे पापा आए हुए हैं। ये घटनाएं हमारे रिश्ते की गहराई को बताती हैं। वह छोटी-छोटी बातों को याद रखती है और समय-समय पर उसका उद्धरण देती है। जैसे- पापा के साथ मैंने पेड़ पर बैठा उल्लू देखा था, पापा ने गोभी की सब्जी बनाई थी, पापा ने खिलौना भेजा था आदि। परिवार के बीच ही मैंने बेटी के लिए मां और पिता की तत्परता में भिन्नता को भी रेखांकित कर पाता हूं। कई बार मैं समय निकालकर बीच में लैपटॉप पर काम करने बैठ जाता है। मेरी इस आदत पर न तो बेटी और न ही उसकी मां टोकती है लेकिन उसकी मां के लिए ऐसा कर पाना दुविधापूर्ण होता है। जब ऐसा करना होता है तब मैं और बेटी दोनों पार्क में टहलने या साइकिल चलाने के लिए जाते हैं। ऐसे ही जब कला और शिल्प से जुड़ी गतिविधियां करनी होती है तो मैं अपनी क्षमताओं और दक्षताओं से पार जाकर उसमें योगदान करना चाहता हूं, लेकिन मेरे कार्य में वह पूर्णता नहीं आ पाती है। मैंने यह भी पाया है कि मां-बेटी के संबंध में एक अपना विशेष संप्रेषण कोड भी तैयार हुआ है, जिसे वे दोनों समझ पाते हैं। मुझे उसे समझने में अतिरिक्त ऊर्जा लगानी पड़ती है।

पिता की भूमिका में मेरे फैसलों, भूमिकाओं और दायित्वों पर सबसे अधिक प्रभाव मेरे खुद के निजी अनुभवों और विकासात्मक संदर्भों का है। मेरा कस्बाई और धार्मिक झुकाव वाला मन महानगरीय जीवन के बीच बेटी को बड़ा होता देखकर उत्साहित और चिंतित होता है। मैं अपने बचपन के अनुभवों से सतत उसकी तुलना करता रहता हूं। मेरी कोशिश होती है उसे उन सांस्कृतिक और आर्थिक अवरोधों से मुक्त रखूं जिनका एक बच्चे के रूप में मैंने प्रत्यक्षण किया था। मैं कस्बाई जीवन के 'मीठे' अनुभवों को कहानी के माध्यम से साझा करता रहता हूं। देशज त्योहारों, पकवानों और शब्दों की जानकारी देना मेरी और उसकी रोजमर्रा की बातचीत का हिस्सा है। उसे कहानी और गप्प के माध्यम से गांवों से परिचित कराता हूं। यह अभ्यास प्रवासी परिवार द्वारा वर्तमान पीढ़ी को उसके परिवार की सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का प्रयत्न है। मैं दिल्ली महानगर में रहकर भी इसे अपना 'घर' नहीं माना पाया हूं। इसी कारण अपनी बेटी को उसके परिवार के इतिहास से जोड़ता हूं। इसी तरह मैं वर्धा की खादी, उसके कपड़ों, खिलौने, खेतों और कुटीर उद्योगों की खाद्य सामग्री आदि द्वारा भी उसे कस्बाई भारतीय जीवन से परिचित कराता रहता हूं।

मेरी इस कस्बाई अस्मिता बोध के साथ अकादमिक परिसर जन्य प्रगतिशीलता भी पिता-पुत्री के संबंध को विशिष्ट बनाती है। बेटी के साथ खेल, पढ़ाई और अन्य अंतःक्रियाओं का अंत इस तथ्य पर बल देने से होता है कि ज्ञान ताकत है। इसे मैं नई वैश्विक-आर्थिक व्यवस्था के बीच सुरक्षित भविष्य के लिए अभिभावक द्वारा बच्चे तक संप्रेषित किए जाने वाले संदेश के रूप में देखता हूं। ऐसे अनेक संदेश मैं उसे रोजमर्रा की अंतःक्रियाओं के दौरान देता हूं। यह सोद्देश्य प्रयास होता है जिसमें उसकी वर्तमान और भावी भूमिकाओं को अधिक प्रभावी बनाने का लक्ष्य होता है। इस दिशा में मुझे कुछ सकारात्मक बदलाव भी दिख रहे हैं। मेरी बेटी असहमतियों को व्यक्त करने में संकोच नहीं करती है। हम दोनों को पता है कि जब वह असहमति व्यक्त करती है तो एक पल के लिए मेरे मन में भारतीय पिता जगता है लेकिन अगले ही पल बालविकास के सारे सिद्धांत विशेष रूप से सोचने और करने की आजादी और कर्तृत्व बोध कौंध जाते हैं और मैं उसकी असहमतियों को स्थान देने लगता हूं। इसी भाव से प्रेरित होकर मैं उससे बात करने के दौरान ऐसी सशक्त महिलाओं की छवि प्रस्तुत करता हूं जो सफल हैं जो कहीं से भी 'मजबूर' नहीं है। वह जब भी मेरे साथ सख़्त व्यवहार करती है तो मुझे खुशी होती है कि वह ऐसा ही सख़्त व्यवहार किसी भी अन्य पुरुष के साथ कर सकती है। मैं उसे सोद्देश्यपूर्ण तरीके से औरतों के बेचारी होने की छवि से दूर रखता हूं। उदाहरण के लिए किसी भी ऐसे मिथकीय पात्र जो महिलाओं के उत्पीड़न का प्रतिनिधि हो, उसे नहीं प्रस्तुति करता हूं। उसके कपड़ों, खिलौने, हाव-भाव और व्यवहार के अन्य क्षेत्रों को रुढ़ियों और पूर्वग्रहों से मुक्त रखने का प्रयत्न करता हूं। विश्वविद्यालय का अध्यापक होने और शिक्षा के विमर्शों से परिचित होने के कारण सचेत रहता हूं कि शिक्षा बोझ न बने। लेकिन 'अच्छे प्रदर्शन' की इच्छा कई बार इस पर भारी पड़ जाती है।

मेरे सारे सपनों और फैसलों के केंद्र में उसका भविष्य है। एक तरह से कहूं तो अब मैं केवल एक अच्छा पिता बनना चाहता हूं। जब-जब मैं इस सवाल पर विचार करता हूं तब-तब मेरे पिता, मेरे ससुर और मेरे पुरुष-अध्यापक विशेष की छवियां और उनकी भूमिकाएं मेरी निगाहों में घूमने लगती हैं। मैं अपनी माता, विश्वविद्यालय की दो शिक्षिकाओं की भूमिकाओं को भी ध्यान में रखकर फैसला लेता हूं। मैं सोचता हूं कि इस स्थिति में ये लोग क्या करते? वे जो करते, क्या वह मेरे और मेरी बेटी के लिए भी उचित होगा? एक तरह से पिता की भूमिका संबंधित मेरे नज़रिए का विकास और उसका क्रियान्वयन एक सामाजिक जाल के बीच हो रहा है। मेरे अभिभावक एवं अभिभावक के जैसे अन्य महत्वपूर्ण सदस्य (मेरे अध्यापक) इसके स्रोत है। मेरी पत्नी यानि कि बेटी की मां भी मेरे पिता की भूमिका को प्रभावित करती है। हम दोनों के बीच होने वाली बातचीत का सर्वाधिक हिस्सा हमारी बेटी पर केंद्रित होता है। मुझे खुशी होती है जब मेरी पत्नी कई बार मेरे परंपरागत विचारों पर प्रश्न खड़ा करती है और हम मिलकर वर्तमान परिस्थितियों और वर्तमान संदर्भों में सोचते हैं। चूंकि मैं अपनी नौकरी के कारण परिवार से दूर रहता हूं तो मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि मेरी पत्नी ही मेरी बेटी के लिए मां और पिता दोनों की भूमिका निभाती है। परिवार, नौकरी और बेटी के लिए उसके समर्पण को सिद्धांत में बांधकर उसकी भूमिका को मैं छोटा नहीं कर सकता। मेरी बेटी के लिए 'पितृत्व' के अभाव की पूर्ति उसके मां के 'मातृत्व' में है। मुझे यह कहने में जरा सा भी संकोच नहीं कि मेरी पत्नी अपनी मां की भूमिका के लिए अपने कैरियर के अवसरों से समझौता करने में जरा भी संकोच नहीं करती है। ऐसे कई मौकों पर मैं उसके जैसा साहस नहीं दिखा पाता हूं। मेरा यह मनन मेरी पत्नी और उसके परिवार के द्वारा मेरी बेटी के लालन-पालन की वास्तविकताओं के सामने कुछ भी नहीं है। इसमें आप कुछ सिद्धांत और कुछ लच्छेदार शब्दावलियों को रेखांकित कर सकते हैं लेकिन इस कहानी का वास्तविक 'नायक' (नायिका नहीं) मेरी पत्नी और मेरी बेटी है जो मेरी अनुपस्थिति में भी परिवार नाम की इकाई को जीवतं और गतिशील बनाए हुए हैं। आने वाले समय में, मैं उनके साथ मिलकर उनकी दुनिया और अपनी दुनिया की साझेदारी करना चाहता हूं। मैं खुद को नायक सिद्ध करने के स्थान पर मां और बेटी को अपनी दुनिया का 'नायक' बनाना चाहता हूं।